ShodhSamajik: Journal of Social Studies
January-June 2026 3(1)
https://shodhsamajik.com/

Original Article

THE CONCEPT OF DHARMA: SCOPE AND COMPLEXITIES

धर्म की अवधारणा: व्यापकता एवं जटिलताएँ

Sanjay Kumar Agrawal[1*], **Dr. Alok Kumar Gupta** [2]
[1] Assistant Professor, Department of Political Science and Public Administration, Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi, India
[2] Professor, Department of Political Science and Public Administration, Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi-835222, India

ABSTRACT

English: The concept of Dharma has been and continues to be one of the most debated concepts. It is often associated with religion or one's duty towards fellow beings. However, the meaning and scope of the concept of Dharma are much broader and constantly expanding. Another misconception surrounding this concept is that it is synonymous with Hinduism or the Hindu religion in general. Therefore, in this article, the authors have attempted to discuss in detail the scope of the concept of Dharma and dispel several misconceptions, negative moral doubts, and superficial arguments surrounding the term. The authors have also described the complexities inherent in this term in detail. The concept of Dharma is inclusive and its interpretation goes beyond faith, religion, God, and any supernatural entity. Therefore, it is essential that students of political thought and others be aware of the social and political ideas of the great thinkers who laid the foundation of Indian social and political institutions. The authors have attempted to highlight the rich traditions of the concept of Dharma in this article, as it has evolved since ancient times, and Indians should rediscover the relevance of this concept by preserving the traditions of "Why Dharma" and the essential religious traditions of India. The rich religious traditions present within the Indian knowledge tradition may become an inspiration for other religious denominations, regardless of their caste, race, color, and creed. The authors conclude that the concept of religion cannot be defined in any single way and cannot be limited to any particular faith or belief system.

Hindi: धर्म की अवधारणा पर सबसे अधिक बहस हुई है और होती रहेगी। इसे अक्सर मजहब या साथी प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य के साथ जोड़ा जाता है। हालाँकि, धर्म की अवधारणा का अर्थ और रूपरेखा बहुत व्यापक है और लगातार विस्तृत होती जा रही है। इस अवधारणा के बारे में फैलाई गई एक और भ्रांति यह है कि यह हिंदू धर्म या सामान्य रूप से हिंदू धर्म के समान है। इसलिए, प्रस्तुत लेख में लेखकों ने धर्म की अवधारणा की रूपरेखा पर विस्तार से विचार-विमर्श करने की कोशिश की है और इस शब्द के इर्द-गिर्द की कई भ्रांतियों, नकरात्मक नैतिक संदेह और दिखावटी तर्क को दूर करने का प्रयास किया है। लेखकों ने इस शब्द के साथ-साथ इसमें अंतर्निहित जटिलताओं का भी विस्तार से वर्णन किया है। धर्म की अवधारणा समावेशी है और इसकी व्याख्या आस्था, मजहब, ईश्वर और किसी भी अलौकिक इकाई से परे है। इसलिए,यह जरूरी है कि राजनीतिक विचारों के छात्रों और अन्य लोगों को भारतीय सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की नींव रखने वाले महान विचारकों के सामाजिक और राजनीतिक विचारों के बारे में पता होना चाहिए। लेखकों ने इस लेख में धर्म की अवधारणा की समृद्ध परंपराओं को उजागर करने का प्रयास किया है , क्योंकि यह प्राचीन काल से विकसित हुई है और भारतीयों को “धर्म क्यों” की परंपराओं की रक्षा करके इस संकल्पना की प्रासंगिकता को और भारत की आवश्यक धार्मिक परंपराओं को फिर से खोजना चाहिए। हो सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के भीतर मौजूद समृद्ध धार्मिक परंपराएं अन्य धार्मिक संप्रदायों के लिए प्रेरणा बन जाएं, चाहे वे किसी भी जाति, नस्ल, रंग और पंथ से संबंधित हों। लेखकों ने निष्कर्ष निकाला है कि धर्म की अवधारणा का अर्थ किसी भी तरीके में तय नहीं किया जा सकता है और इसे किसी मजहब और विश्वास तक सीमित नहीं किया जा सकता है।

*Corresponding Author:
Email address: Sanjay Kumar Agrawal (akgalok@gmail.com), Dr. Alok Kumar Gupta (sanjay.agrawal@cuj.ac.in)

Received: 09 December 2025; **Accepted:** 22 January 2026; **Published** 11 February 2026
DOI: 10.29121/ShodhSamajik.v3.i1.2026.61
Page Number: 51-55
Journal Title: ShodhSamajik: Journal of Social Studies
Journal Abbreviation: ShodhSamajik J. Soc. Stud.
Online ISSN: 3049-2319, **Print ISSN:** 3108-2009
Publisher: Granthaalayah Publications and Printers, India
Conflict of Interests: The authors declare that they have no competing interests.
Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.
Authors' Contributions: Each author made an equal contribution to the conception and design of the study. All authors have reviewed and approved the final version of the manuscript for publication.
Transparency: The authors affirm that this manuscript presents an honest, accurate, and transparent account of the study. All essential aspects have been included, and any deviations from the original study plan have been clearly explained. The writing process strictly adhered to established ethical standards.
Copyright: © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

Keywords: Religion, Concept, Solutions, Belief, Hinduism, Dominion Status धर्म, अवधारणा, मजहब, आस्था, हिंदू धर्म, अलौकिक

प्रस्तावना

धर्म,मजहब नहीं है: न ही यह धार्मिक आस्था या धार्मिक मतों के पालक होने से संबंधित है। यह ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक अवधारणा को भी नहीं मानता।[1] सत्य के अनुरूप मनुष्य के आचरण के सिद्धांत को धर्म कहा जाता है। यद्यपि, यह भारतीय ज्ञान प्रणाली और प्राचीन परंपराओं में अंतर्निहित एक जटिल अवधारणा है, लेकिन धर्म की अवधारणा का यह सबसे सरल अर्थ है। हालाँकि, यह अवधारणा हमेशा विवादों में रही है क्योंकि इसे प्राचीन हिंदू विचारधारा से निकले जीवन के नुस्खों की योजना से अधिक धार्मिक स्वरुप में बदल दिया गया है।

भारत दुनिया के चार महान मजहबों की उत्पत्ति की भूमि रहा है: हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म और जैन धर्म। कम से कम इन चार मजहबों में धर्म की अवधारणा को जगह मिली है। इन धर्मों के भीतर विभिन्न संप्रदायों के अलावा, कई अन्य धार्मिक परंपराएँ हैं जो काफी हद तक स्थानीय रही हैं और उनमें से कई अब लुप्त हो चुकी हैं। अब तक के शोध, जांच और पुरातात्विक सर्वेक्षणों के माध्यम से यह स्थापित हो चुका है कि भारत 5,000 साल पुरानी सभ्यतागत विरासत का उत्तराधिकारी है, जो भारत की अवधारणा (idea of Bharat) के साथ मेल खाने के साथ साथ भारत के धार्मिक चरित्र को एक अद्वितीयता प्रदान करता है। इस प्रकार, अब तक एक अरब से अधिक हिंदुओं का घर होने के बावजूद, भारत की धार्मिक परंपराएँ आंतरिक और बाहरी दोनों कारणों से गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही हैं। इसे संकीर्ण और पक्षपातपूर्ण राजनीति का शिकार बनाया जा रहा है, जबकि इसे दुनिया भर के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अपने धार्मिक संप्रदायों के बावजूद अपनाया जाना चाहिए था।

सच तो यह है कि भारतीय विचारकों के द्वारा निर्मित साहित्य को प्राचीन ग्रीस के दर्शनशास्त्र से लेकर मध्य युग के अंत तक पश्चिम में राजनीतिक विचारों के विकास से संबंधित ग्रंथों में स्थान नहीं मिल सका। तदनुसार, पश्चिमी शिक्षाविद और भारतीय उदारवादी, जिनमें न्यायपालिका, नौकरशाही और विधायिका जैसी संस्थाओं के भीतर के कुछ लोग भी शामिल हैं जो हिंदू विरोधी विचारों को आगे बढ़ाने के लिए आंतरिक दोषों के सन्दर्भ में नकरात्मक नैतिक संदेह और दिखावटी तर्क का उपयोग कर रहे हैं। हिंदू धर्म और हिंदुत्व के बीच अंतर करने के कारण ऐसा ही एक विभाजन पैदा किया जा रहा है। इसलिए, यह जरूरी है कि राजनीतिक विचारों के छात्रों और अन्य लोगों को भारतीय सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की नींव रखने वाले महान विचारकों के सामाजिक और राजनीतिक विचारों के बारे में पता होना चाहिए। लेखकों ने इस लेख में धर्म की अवधारणा की समृद्ध परंपराओं को उजागर करने का प्रयास किया है, क्योंकि यह प्राचीन काल से विकसित हुई है और भारतीयों को "धर्म क्यों" की परंपराओं की रक्षा करके इस संकल्पना की प्रासंगिकता को और भारत की आवश्यक धार्मिक परंपराओं को फिर से खोजना चाहिए। हो सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के भीतर मौजूद समृद्ध धार्मिक परंपराएं अन्य धार्मिक संप्रदायों के लिए प्रेरणा बन जाएं, चाहे वे किसी भी जाति, नस्ल, रंग और पंथ से संबंधित हों।

धर्म की अवधारणा का अर्थ

डॉ. राधाकृष्णन द्वारा प्रतिपादित धर्म शब्द का महत्व जटिल है।[2] उनके अनुसार यह उन सभी आदर्शों और उद्देश्यों, प्रभावों और संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है जो एक व्यक्ति और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के चरित्र को आकार देते हैं। यह सही जीवन जीने का नियम है, जिसके पालन से धरती पर सुख और मोक्ष की दोहरी प्राप्ति होती है।[3] राधाकृष्णन ने इसी लहजे में वर्णन किया है कि यह नैतिकता और धर्म का संयोजन है। उन्होंने आगे दोहराया कि एक हिंदू का जीवन धर्म के नियमों द्वारा बहुत विस्तृत तरीके से विनियमित होता है। व्रत और भोज, सामाजिक और पारिवारिक संबंध, उसकी व्यक्तिगत आदतें और रुचियाँ सभी धर्म द्वारा निर्धारित होती हैं।

12वीं सदी के दार्शनिक माधवाचार्य[4] ने कहा, "धर्म को परिभाषित करना सबसे कठिन है। धर्म वह है जो जीवों के उत्थान में मदद करता है। इसलिए, जो जीवों का कल्याण सुनिश्चित करता है, वह निश्चित रूप से धर्म है। विद्वान ऋषियों ने घोषित किया है कि जो बनाए रखता है वह धर्म है।"[5] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अवधारणा किसी भी तरह से धार्मिक सिद्धांत होने की अपेक्षा पृथ्वी ग्रह पर रहने वाले प्राणियों के जीवन की योजना के संदर्भ में सर्वव्यापी है।

धर्म शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ अक्सर अंग्रेजी में अधिकांश लोगों द्वारा "कर्तव्य" के रूप में अनुवादित किया जाता हैं। हालाँकि,अन्य संदर्भों और धार्मिक अर्थों के आधार पर, कई लोगों द्वारा इसका प्रयोग अलग-अलग तरीके से किया गया है।उदाहरण के लिए, जैन और सिख, धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक मार्गों के लिए करते हैं, जबकि बौद्ध इसे एक ब्रह्मांडीय कानून के रूप में संदर्भित करते हैं। हिंदू न्यायशास्त्र ने इसके अर्थ का विस्तार करते हुए इसमें विभिन्न कर्तव्यों को शामिल किया है, जैसे: सामाजिक, कानूनी, धार्मिक और आध्यात्मिक कर्तव्य। कुछ लोग न्याय एवं नैतिकता की अवधारणा को धर्म कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इस शब्द को कानून के बराबर भी माना है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि धर्म की अवधारणा की रूपरेखा असीमित हैं और यह ईश्वर, मजहब और धार्मिक ग्रंथों से परे है।

---

[1] Sunil Sahasrabudhey, "Gandhi's Challenge to Modern Science", (Goa: Other India Press, 2002), p.20

[2] S. Radhakrishnan, *Indian Religions* (New Delhi, Mumbai, Hyderabad: Orient Paperbacks, 1979), p.73.

[3] *Abhyudaya* and *Nihsreyasa*. As quoted in S. Radhakrishnan, Ibid., No. 2,p.73.

[4] Madhvacharya was a 12th Century philosopher, theologian and a reformer. He is considered as the father of Advaita Vedanta, the most prominent school of Hindu philosophy. He is the third of the trinity of philosophers who influenced Indian thoughts after the ages of the Vedas and Puranas. He came after Sri Shankaracharya and Sri Ramanujacharya and propounded the philosophy of Dwaita or Dualism. See for details https://www.karnataka.com/personalities/madhvacharya/ (Retrieved on September 5, 2023).

[5] Shanatanu Rathore, "Symbiosis Law School, Noida, Dharama and Law, May 13, 2015. As quoted by Dr. Rajashree Choudhary, "The Concept of Dharma or Justice in Indian Thought", Indian Research Journal of Management Science & Technology, 13(2), 2022, (online edition). Available on https://www.scribd.com/document/644529807/DHARMA-AND-LAW# (Retrieved on September 05, 2023). See also Mahabharata, Santiparva, 109, 9-11.

धर्म का अर्थ है 'वह जो' सही आचरण, व्यक्तिगत जिम्मेदारी, ईमानदारी और नैतिक व्यवहार को बनाए रखता है' - या इनका मिश्रण। यह कोई पश्चिमी आयात नहीं है, और यह पूरी तरह मजहब से संबंधित नहीं है। यह यहूदी, ईसाई और इस्लामी-- यानी अब्राहमिक - संदर्भ में परिभाषित मजहब के विचार से परे है और भारतीय राष्ट्रवाद के विचार में योगदान देता है। धर्म मोटे तौर पर परिवर्तन के साथ निरंतरता का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी अवधारणा विभिन्न युगों में बदलती रहती है। सनातन धर्म कुछ 'शाश्वत' का प्रतीक है, जिसका तात्पर्य समय के साथ बदलने की इच्छा है, बिना उन मूल मूल्यों का त्याग किए जो काफी हद तक स्थिर रहने चाहिए। यह स्थिर रहने और एक विचार में उलझे रहने के बारे में नहीं है।इस प्रकार सनातन धर्म को 'कभी न बदलने वाला और सदैव परिवर्तनशील' के रूप में समझा जा सकता है।[6] इसका अर्थ हिंदू जीवन शैली भी हो सकता है जो धर्म की अवधारणा में निहित है। राधाकृष्णन ने भी बताया है कि मानव जीवन का शाश्वत स्वप्न, आत्मा की अपनी स्थिति प्राप्त करने की आकांक्षा ही हिंदू धर्म का आधार है। यह मानता है कि मौलिक वास्तविकता मनुष्य की आत्मा है।[7]

आधुनिक विद्वानों द्वारा धर्म का व्यापक रूप से मजहब के रूप में अनुवाद किया है, और भारतीय पारंपरिक धर्म का अनुवाद हिंदू धर्म के रूप में किया गया है।इसका मुख्य कारण यह है कि यूरोपीय विद्वानों ने धर्मों और विश्वास-प्रणालियों के अस्तित्व और संचालन को केवल संगठित रूप में, अर्थात् सम्प्रदायों के रूप में ही देखा है। हालाँकि, भारतीय ज्ञान परंपरा में, धर्म काफी हद तक संप्रदायों से स्वतंत्र रहा है, जिनकी विशेषता उनके दर्शन और अनुष्ठान थे। ऐसा नहीं है कि दुनिया के दृष्टिकोण का धर्म पर कोई असर नहीं था, लेकिन यह संबंध न तो निश्चित प्रकार का था और न ही बहुत घनिष्ठ था।[8] राधाकृष्णन ने सही कहा है कि जबकि मनुष्य की आध्यात्मिक पूर्णता सभी प्रयासों का लक्ष्य है, हिंदू धर्म किसी भी धार्मिक विश्वास या पूजा के रूप पर जोर नहीं देता है। सर्वोच्च को संबोधित करने और उससे संपर्क करने के मामले में अधिकतम स्वतंत्रता दी गई है। हिंदू विचारक, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र के अच्छे विद्यार्थी थे और उन्हें कभी भी धार्मिक विश्वासों को थोपने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। धार्मिक मामलों में गलतफहमी और विरोध तब पैदा होता है, जब हम ईश्वर के बारे में अपने विचारों के पक्ष में अत्यधिक दावे करते हैं।[9] तथ्य यह है कि विभिन्न धर्मों और देशों के अधिकांश ग्रंथों में समान अर्थ वाली अवधारणा की उपस्थिति हो सकती है। हालाँकि, कई लोग इस अवधारणा का विरोध करते हैं और हिंदू धर्म को एक मजहब से संबंधित बताते हैं,जो कि पूरी तरह गलत है।

धर्म समय-सम्मानित आचार संहिता है। इसे नैतिक-कानूनी सिद्धांतों के एक निरंतर बढ़ते संग्रह के रूप में माना जाता है जो पुरुषों और महिलाओं के जीवन को उनके हित में, उनके सामाजिक गठन में, समाज और ब्रह्मांड में उनके स्थान के अनुसार और विशेष परिस्थितियों आदि की आवश्यकताओं में नियंत्रित करता है। इसलिए, धर्म के नाम पर हमारे पास व्यक्तियों के अधिकारों और कर्तव्यों की एक अत्यधिक जटिल संरचना है जो उनके सामाजिक और व्यावसायिक जीवन को नियंत्रित करती है, परिवार के सदस्यों, मित्रों, पड़ोसियों, सहकर्मियों, वरिष्ठों, अधीनस्थों, शत्रुओं आदि के प्रति उनके आचरण और साथ ही उनके साथ काम करने वाले पशुओं, जानवरों और उनके जीवन के भौतिक संसाधनों जैसे हवा, पानी, खनिज आदि के प्रति उनके आचरण को नियंत्रित करती है। यह केवल धर्म शब्द के दायरे का एक विचार देने के लिए है।[10]

महत्वपूर्ण बात यह है कि धर्म वर्ग-समाजों की घटना नहीं है, जहां परस्पर विरोधी हित होते हैं। न ही यह वर्गविहीन समाजों के लिए प्रासंगिक घटना है। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म समाज को वर्गों में विभाजित नहीं मानता। यह पूरी तरह से अलग तरीके से कल्पना और साकार किए गए समाजों की घटना है। जब गांधीजी वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास व्यक्त करते हैं तो वे वर्गों की वांछनीयता की बात नहीं कर रहे होते हैं, बल्कि समाज के एक बिल्कुल भिन्न प्रतिमान के प्रति अपनी प्राथमिकता का संकेत दे रहे होते हैं - एक ऐसा समाज जो सत्य के अनुसार धर्म के निर्देशों द्वारा शासित हो। इसलिए, हमें यह समझना चाहिए कि एक सच्चा समाज वह है जो धर्म द्वारा शासित होता है, तथा उस सीमा तक सत्य होता है जहां तक धर्म वास्तव में शासन करता है।

धर्म को केवल दैनिक जीवन के लिए नियमों या दिशा-निर्देशों के एक समूह के रूप में देखना गलत होगा,या यह सोचना भी गलत होगा कि हिंदू धर्म पूरी तरह या आंशिक रूप से मजहब से संबंधित है। उपरोक्त विचार-विमर्श से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की अवधारणा मजहब और धार्मिक विश्वासों से परे है, यह अधिकतम एक जीवन पद्धति है जो व्यक्ति और समाज की प्रकृति या पर्यावरण के अनुरूप है। इसलिए, इसके पास करने के लिए महान कार्य हैं। उदाहरण के लिए, यह मानव जाति के संचित अनुभव का वह विशिष्ट रूप है जो प्रकृति की लय को मानवीय मूल्यों से भर देता है, यह वस्तुओं और प्राकृतिक प्रक्रियाओं के संयोजनों को नैतिक रूप से इस तरह से ढालता है कि वे मनुष्य के कल्याण की ओर उन्मुख हों। धर्म विद्या में संयम का स्रोत है जो बदले में धर्म के विकास का स्रोत है।[11] इस प्रकार, विद्या और धर्म एक दूसरे से अविभाज्य हैं और हमारे लिए सत्य के उस विस्तार का निर्माण करते हैं जो ईश्वर से संबंधित है, जिसे मानवीय गतिविधि कहा जा सकता है, न कि इसे ईश्वर से प्रकट उपदेशों के रूप में बराबर किया जाए।

धर्म की अवधारणा का विकास

धर्म की अवधारणा के शुरुआती संकेत ऋग्वेद जैसे वैदिक ग्रंथों में मिलते हैं, जिसका अर्थ है ब्रह्मांड की नींव। ऐसे धार्मिक ग्रंथों ने दावा किया कि ईश्वर ने सभी जीवित प्राणियों में धर्म के सिद्धांत को विकसित करते हुए जीवन का निर्माण किया। इसलिए, हिंदू धर्म के अनुसार मोक्ष मनुष्यों के लिए शाश्वत धर्म है।[12] हिन्दू धर्म केवल धर्मशास्त्र नहीं है; बल्कि यह जीवन की एक योजना है। किसी को रूढ़िवादी हिंदू इसलिए नहीं माना जा सकता कि वह ईश्वर के एक या दूसरे रूप में विश्वास करता है; बल्कि इसलिए माना जा सकता है कि वह धर्म को स्वीकार करता है या अस्वीकार करता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति धर्म के अनुसार जीवन

[6] R. Jagannathan, Dharmic Nation: Freeing Bharat, Remaking India (New Delhi: Rupa Publications, 2023), p.2.
[7] Ibid., No. 2, p.73.
[8] Ibid., No. 1, p.20
[9] Ibid., No. 2, p.74.
[10] Ibid., No. 1, p.21.
[11] Ibid., No. 1, p.21.
[12] "Schools of Jurisprudence—Concept of Dharma", Available at: https://www.toppr.com/guides/legal-aptitude/jurisprudence/schools-of-jurisprudence-concept-of-dharma/#:~:text=According%20to%20Hindu%20jurisprudence%2C%20Dharma,gives%20it%20a%20moralistic%20interpretation. (Retrieved on August 20, 2023).

जी सकता है, भले ही वह किसी एक या दूसरे ईश्वर या धर्म में विश्वास करता हो। जो व्यक्ति धार्मिक जीवन के सिद्धांतों में दृढ़ता से विश्वास करता है वह निश्चित रूप से एक हिंदू है।धर्म द्वारा निर्धारित उच्चतम जीवन वह है जो ईश्वर की वास्तविकता में उसका विश्वास स्वाभाविक रूप से निर्माण करे । यदि मनुष्य में ईश्वर का निवास सर्वोच्च सत्य है, तो जो आचरण वह व्यवहार में लाता है, उसे आदर्श आचरण कहा जाता है।अनेक गुण सत्य के ही रूप हैं,सत्यकार हैं। सिद्ध पुरुषों के लिए धर्म भीतर से प्रेरणा है; दूसरों के लिए यह एक बाहरी आदेश है,जो रीति-रिवाज और जनमत की मांग करता है। [13]

प्रारंभिक वैदिक काल लगभग 1500 ईसा पूर्व का है, जब आर्यों ने उत्तर-पश्चिम से भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के मैदानों में बस गए। देवताओं की स्तुति में भजनों से युक्त ऋग्वेद की रचना लगभग 1200-1000 ईसा पूर्व हुई होगी। यह वह काल है जब ऋत (ऋत-ब्रह्मांडीय व्यवस्था) की अवधारणा का जन्म हुआ। ऋत धार्मिकता और ब्रह्मांडीय संतुलन दोनों का नियम है और अपने आप में एक एकीकृत संपूर्णता की धारणा को जोड़ता है जिसमें देवता, मनुष्य और प्रकृति भाग लेते हैं। ऋषियों (द्रष्टाओं) को बताए गए वेदों के बाद ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद नामक विस्तार हुए। इन विस्तारों की विषय-वस्तु में बलिदान की विधि से लेकर दार्शनिक और काव्यात्मक अभिविन्यास के ध्यानपूर्ण कार्य शामिल थे। [14] श्रुति (जिसे सुना गया) और स्मृति (जिसे याद रखा गया) को सनातन-धर्म (शाश्वत नियम) माना जाता था और मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढाया जाता था।

कालांतर में उपनिषदों ने धर्म की अवधारणा को परिष्कृत कर उसे अधिक नैतिक बना दिया। अब तक धर्म की अवधारणा बहुआयामी हो चुकी है। इसमें कानून, रीति-रिवाज, मजहब, प्रशासन, अर्थशास्त्र, दीवानी और फौजदारी कानून, विवाह और उत्तराधिकार आदि शामिल हैं। इसलिए,धर्म की रूपरेखा भी निरंतर विस्तृत होती जा रही है। धर्म की अवधारणा ऋत से उत्पन्न हुई तथा इसमें ऋत के मूल अर्थ समाहित थे - एक उचित क्रम जिसके उदाहरण सूर्य, पृथ्वी, ऋतु आदि की प्राकृतिक शक्तियां थीं (जल का धर्म है बहना), देवताओं और समाज में उनके समकक्षों के बीच कार्यात्मक अंतरों के बीच समानता, तथा सभी के संतुलन को बनाए रखने में मनुष्य और देवताओं दोनों की भूमिका। [15]

धर्म - विकास के दौरान इसका विस्तृत अर्थ

धर्म का कानूनी अर्थ: राष्ट्र-राज्यों के आगमन होते ही धर्म ने एक कानूनी अर्थ प्राप्त कर लिया। मनुस्मृति जैसे हिंदू कानूनी संहिताओं में धर्म का उपयोग लोगों के धार्मिक और कानूनी कर्तव्यों के लिए किया गया है । इसलिए, भारतीय परंपराओं में मनु को प्रथम विधि निर्माता माना गया है।

धर्म की निर्देशात्मक अवधारणा: धर्म का उपयोग एक नुस्खे के रूप में भी किया गया है, जो यह बताता है कि लोगों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। यह आज भी हिंदू धर्म की कई परंपराओं में मौजूद है। प्रथम विधि निर्माता मनु ने भी स्पष्ट रूप से जोर दिया है कि सभी परिस्थितियों में धर्म के सिद्धांतों को बनाए रखा जाना चाहिए। यहां तक कि जब वे गृहस्थ आश्रम के लिए सुख का प्रावधान करते हैं और गृहस्थ बन जाते हैं, तो उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जीवन का आनंद लेते हुए और धन कमाते हुए, व्यक्ति को जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को नहीं भूलना चाहिए। सुख और लाभ को उचित कार्य के रूप में मान्यता दी गई है, लेकिन इस बात पर जोर दिया गया है कि वे धर्म के साथ असंगत नहीं होने चाहिए। मनु के अनुसार गृहस्थ जीवन के लिए कहावत है, "सुख धर्म के विपरीत नहीं है, और लाभ भी धर्म के विपरीत नहीं है। उसका जीवन कर्तव्य से भरा होना चाहिए, कर्तव्य का ईमानदारी से निर्वहन करना चाहिए। हालाँकि, यह सुख के साथ होगा, वैवाहिक प्रेम में सुख, माता-पिता का सुख, और गृहस्थ जीवन से संबंधित छोटे-मोटे कर्तव्यों के पालन में सुख। यह सुख उतना ही ईश्वर प्रदत्त है जितना कि कठोर परिश्रम और वीरतापूर्ण मृत्यु।" [16]

वर्णाश्रम धर्म : जीवन के वर्गों और चरणों का अनुशासन मानव स्वभाव के क्रमिक सुधार के लिए हिंदुओं का उपकरण है। [17] व्यक्तिगत आत्मा की शिक्षा, आश्रमों या जीवन के चरणों और वर्णों या मनुष्य के वर्गों की योजना के माध्यम से व्यवस्थित की जाती है। मनुष्य इच्छाओं का एक समूह है। मनु कहते हैं, "यह अच्छा नहीं है कि आत्मा इच्छाओं के गुलाम बने, फिर भी कहीं भी इच्छाहीनता (अकामता) नहीं पाई जाती है।" चूंकि हमारी गतिविधियाँ हमारी इच्छाओं से प्रेरित होती हैं, इसलिए हमारी इच्छाओं का सही नियमन भी धर्म का एक हिस्सा है। जब विभिन्न वर्ग अपने-अपने कार्यों को पूरा करते हैं, तो समाज को न्यायपूर्ण एवं धर्म के अनुरूप माना जाता है।

धर्म - सुख और लाभ दोनों को नियंत्रित करता है : धर्म या कर्तव्य सुख और लाभ (काम और अर्थ) दोनों की खोज को नियंत्रित करता है। जिन लोगों में धर्म की प्रधानता होती है, वे सात्विक प्रकृति के होते हैं, जबकि धन के चाहने वाले राजसिक प्रकृति के होते हैं और केवल सुख के चाहने वाले तामसिक प्रकृति के होते हैं। [18] जो व्यक्ति धर्म के नियमों का पालन करता है, वह स्वतः ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है, और इसलिए कहा जाता है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के लक्ष्य हैं। [19]

धर्म - अधिकारों से अधिक कर्तव्य : रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में धर्म का उल्लेख इस अर्थ में किया गया है कि यह व्यक्ति का अंतिम कर्तव्य है। यह वकालत करता है कि राजा धर्म को बनाए रखने के लिए मौजूद है, इसलिए अक्सर इसे 'धर्मराज' के रूप में संबोधित किया जाता है। इसे प्राकृतिक कानून के रूप में माना जाता है क्योंकि यह मानता है कि भगवान ने लोगों को अधिकार दिए हैं, और इस प्रकार यह सभी सामाजिक, कानूनी, राजनीतिक और आध्यात्मिक अधिकारों का स्रोत है। इसलिए, अधिकार ईश्वरत्व में उत्पन्न होते हैं, जिसका पालन व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करके करना चाहिए। इसे 'राजाओं के दैवीय अधिकार सिद्धांत' के बराबर माना जा सकता है क्योंकि इसे पश्चिम से राजनीतिक सिद्धांत में आयात किया गया है। [20]हालाँकि, इसे उचित परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। पश्चिमी धारणाओं ने दैवीय अधिकार सिद्धांत के तहत राजा को अपनी मर्जी के अनुसार प्रजा पर शासन करने का अडिग अधिकार दिया, जैसा कि मध्ययुगीन ब्रिटिश

---

13 Ibid., No. 2, p.76.

14 Maragaret Chatterjee, The Concept of Dharma in Doeser, M.C. and Kraay, J.N. (eds.), Facts and Values (The Netherlands: Martinus Nijhoff Publishers). Available at: file:///C:/Users/hp/Desktop/17-Reading%20Material/New%20folder/dharma.pdf (Retrieved on August 20, 2023).

15 Ibid., No. 14.

16 Annie Besant as quoted in Kewal Motwani, Manu Dharma Shastra, pp.118-111.

17 Ibid., No. 2, p.78.

18 As quoted by Ibid., No. 2, p.79.

19 As quoted from Manu by S. Radhakrishnan, Ibid., No. 2, p.80.

20 Ibid., No. 2, p.85.

राजनीति के दौरान प्रसिद्ध कहावत थी “राजा कुछ भी गलत नहीं कर सकता”। दूसरी ओर, भारतीय ज्ञान प्रणाली इसका एक शुद्ध और पवित्र संस्करण प्रस्तुत करती है कि राजा की शक्तियाँ यद्यपि ईश्वर द्वारा निर्धारित होती हैं या दैवीयता से उत्पन्न होती हैं, लेकिन धर्मराज होने के नाते, राजा को ऊपर बताए गए धर्म के सिद्धांतों को बनाए रखना चाहिए। राजा की शक्ति धर्म की रूपरेखा से बंधी थी और उसे ही सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में धर्म को बनाए रखना था। शासकों को धर्म को रद्द करने या बदलने का अधिकार नहीं था, बल्कि उन्हें केवल इसे प्रशासित करने का अधिकार था। धर्म में परिवर्तन ब्राह्मण विचारकों द्वारा किए गए, जिनके पास कोई निहित स्वार्थ नहीं था, लेकिन वे अनिवार्य गरीबी में आध्यात्मिक जीवन जीते थे। वे संदेह और कठिनाई के मामलों में धर्म की व्याख्या करते हैं। ब्राह्मण उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ अहिंसा का जीवन जीता है। उसकी अहिंसा कमजोरी या कायरता का संकेत नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक शक्ति और दिव्य प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

धर्म को जाति के साथ समान नहीं माना जाना चाहिए : "जाति पर तब विचार किया जा सकता है जब यह विवाह या निमंत्रण का प्रश्न हो, लेकिन धर्म पर नहीं; क्योंकि धर्म का संबंध सद्गुणों से है, और जाति से उसका कोई लेना-देना नहीं है।" यह कथन संभवतः अशोक महान ने अपने हिंदू मंत्री से कहा था। धर्म में सभी प्रकार के लोगों के लिए जगह है, उदासीन वृद्ध जो जीवन के व्यवसाय से सेवानिवृत्त हो चुके हैं और उत्साही युवा जो सांसारिक सफलता के लिए उत्सुक हैं।

धर्म—कर्तव्य बनाम अधिकार

हिंदू न्यायशास्त्र अधिकारों से अधिक कर्तव्यों पर जोर देता है। धर्म एक ऐसी अवधारणा है जो इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि यह प्राचीन हिंदू ग्रंथों से निकलती है और शास्त्रों या ग्रंथों के विभिन्न नुस्खों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के अंतिम कर्तव्यों की वकालत करती है। प्रत्येक व्यक्ति को सौंपा गया कर्तव्य अलग-अलग होता है। शासक का कर्तव्य देश के कानून को बनाए रखना है, राजा जिसे धर्म का अवतार माना जाता है, उसे धार्मिक कानूनों और परंपराओं को बनाए रखना होता है और किसान को नागरिकों को जीविका प्रदान करके धर्म को बनाए रखना होता है।

सभी वर्गों के सदस्यों द्वारा संबंधित कर्तव्यों का पालन धर्म की अवधारणा से जुड़ा हुआ है जो मनु की शिक्षाओं का भी मुख्य उद्देश्य है। मनु ने अपने ग्रंथ को धर्म शास्त्र कहा है और इस संस्कृत शब्द के समानांतर कोई शब्द खोजना मुश्किल है।यह ग्रंथ व्यक्ति के सामाजिक जीवन के कई चरणों को दर्शाता है, जिसके लिए जीवन के विशाल परिदृश्य को एक एकीकृत स्वरूप में लाने की आवश्यकता है।यह शब्द संस्कृत भाषा के मूल ध्र(dhr) से आया है जिसका अर्थ है एक साथ रखना। तदनुसार, धर्म एक सामाजिक शक्ति है जो जीवन के विभिन्न क्रमों को एक साथ रखती है, जैसे खनिज, पौधे, पशु, मानव और अतिमानव; एक व्यक्ति के शारीरिक, जैविक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के विभिन्न चरण; चेतना के विभिन्न स्तर, जैसे चलना, सोना, स्वप्न और स्वप्नहीनता; विभिन्न सामाजिक समूह; जैसे शिक्षक, लोक सेवक, व्यापारी और शारीरिक श्रमिक; विभिन्न जलवायु और देशों में विभिन्न समूहों के लिए मूल्यों के विभिन्न स्तर। मानवीय क्रियाकलापों के ये सभी तरीके तभी अपना अर्थ और महत्त्व प्राप्त करते हैं जब उन्हें एक सार्थक ढांचे में एकीकृत किया जाता है,जिसे धर्म कहते हैं।

धर्म वह एकजुट करने वाली शक्ति प्रदान करता है जो विभिन्न व्यक्तियों को जाति या वर्ण में, विभिन्न वर्णों को समुदाय में तथा विभिन्न समुदायों को मानव भाईचारे में एक जैविक एकता में बांधता है। यह शिक्षा, परिवार, उद्योग, कानून और मजहब जैसी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के बीच संपर्क सूत्र भी प्रदान करता है; और उन्हें सभी के अंतिम लक्ष्य अर्थात सर्वोच्च सत्ता के साथ एक होकर उच्चतम प्रकार की चेतना की प्राप्ति की ओर सद्भावनापूर्वक एक साथ आगे बढ़ने में सक्षम बनाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के चतुर्भुजीय उद्देश्य की व्याख्या करते हुए प्राचीन भारतीय ऋषियों ने धर्म को आधार पर तथा मोक्ष को शीर्ष पर रखा। यदि जीवन धर्म पर आधारित है, तो यह धन कमाने और नैतिक तरीके से जीवन का आनंद लेने (अर्थ और काम) को आसान बनाता है। यह बदले में मोक्ष की ओर ले जाता है जिसका अर्थ है आत्म-साक्षात्कार के लिए ऊर्जा की मुक्ति। कोई यह समझ सकता है कि धर्म अधिकारों से अधिक कर्तव्य के समान है, लेकिन अधिकार केवल कर्तव्यों के पालन से ही निकलते हैं। अपने कर्तव्यों के पालन के माध्यम से व्यक्ति स्वतः ही अधिकारों का हकदार हो जाता है। अन्यथा, किसी के जीवन में अधिकारों बनाम कर्तव्यों के संदर्भ में धर्म की अवधारणा को समझना मुश्किल हो जाता है।

निष्कर्ष

एक अवधारणा के रूप में धर्म विशाल एवं अथाह है और यही इस शब्द की सुंदरता और गंभीरता है। इसका अर्थ उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें इसका उपयोग किया जाता है। इस शब्द को कुछ समानार्थी शब्दों के साथ समान माना जा सकता है, जैसे: कर्तव्य, अधिकार, आचरण, व्यवहार, नैतिकता, पवित्रता, धर्म, अच्छाई, न्याय, कानून, सदाचार, शासन करने का अधिकार, आदि; फिर भी इसका अर्थ सर्वव्यापी तो है, लेकिन अपूर्ण है। इसे व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं और आवश्यकताओं की सामंजस्यपूर्ण उपलब्धि के संदर्भ में समझा जाना चाहिए- जिसमें अर्थ, काम, मोक्ष शामिल हो सकते हैं, फिर भी यह धर्म के अर्थ से कहीं भी संबंधित या सीमित नहीं है। अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में इस शब्द का सटीक समकक्ष खोजना मुश्किल है, इसका अनुवाद अध्यादेश, कर्तव्य, अधिकार, न्याय, नैतिकता, कानून, सद्गुण, आचरण और धर्म के अर्थ में अलग-अलग तरीके से किया गया है, फिर भी यह निरंतर विस्तारशील ही रहा है।[21]

यह वर्तमान मे भी कभी विचारों के टकराव के माध्यम से तो कभी व्याख्या और बौद्धिक अभ्यास के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणालियों की परंपराओं के विकास के दौरान विकसित हो रहा है। अब समय आ गया है कि सभी भारतीय धर्म के मार्ग को फिर से खोजने की चुनौतियों की ओर लौटें। दुनिया भर में और धर्म के विभिन्न संप्रदायों के लोगों को औपनिवेशिक विचारों के बोझ से खुद को मुक्त करना चाहिए, जिसने उन्हें आत्म-घृणा करने वाले व्यक्ति में बदल दिया है। धर्म स्वयं की मुक्ति है; स्वयं और समाज दोनों की मुक्ति; बशर्ते हम धर्म की अवधारणा को मजहब, राजनीति और हिंदू धर्म की बेड़ियों से मुक्त करें। यह प्राचीन हिंदू विचार या भारतीय ज्ञान परंपराओं के माध्यम से मानव जाति को प्रदान की गई 'आंतरिक संतुष्टि के सन्दर्भ में शांतिपूर्ण समन्वयित जीवन जीने के लिए सबसे कीमती और अद्वितीय साधन सामग्री (टूलकिट)' में से एक है। समकालीन समाजों के लिए सांस्कृतिक आदान-प्रदान और दुनिया के अधिकांश मजहबों के उपदेशों में मौजूद अच्छी चीजों को स्वीकार करने की इच्छा की आवश्यकता है, न कि अपने ज्ञान और परंपराओं को दूसरों पर थोपने का प्रयास करना

[21] As quoted from Indian Social Reformer, 4 June 1922 by S. Radhakrishnan, Ibid., No. 2, p.92.